भारत : विकास और सुधार के अनुभव तथा संभावनाएं *

या.वे.रेड्डी

मैं बैंक ऑफ मेक्सिको में आप जैसे विशिष्ट श्रोतागणों को सम्बोधित करते हुए प्रसन्नता का अनुभव कर रहा हूं। मैं गवर्नर ओर्टिज, जो केंद्रीय बैंक गवर्नरों में सर्वाधिक आदरणीय हैं, द्वारा दिये गये इस आमंत्रण से सम्मानित हुआ हूं। उनकी अवधारणाएं तथा बुद्धिमत्तापूर्ण विचारों का उत्कंठापूर्वक स्वागत किया जाता है, जो सिद्धांतों तथा सार्वजनिक नीति के निर्माण में आने वाली विवशताओं (अनिवार्यताओं) की सुदृढ़ समझ पर आधारित होते हैं। वास्तव में, गवर्नर ओर्टिज अंतर्राष्ट्रीय निपटान बैंक में केंद्रीय बैंक संचालन समूह के अध्यक्ष हैं, जिसका मैं एक सदस्य हूं। नवम्बर 2006 में भारतीय रिज़र्व बैंक में उनके द्वारा ''वित्तीय स्थिरता के मेक्सिको के अनुभव'' विषय पर दिये गये उनके व्याख्यान को हम सभी उत्साहपूर्वक याद करते हैं। पुनः इसी आगमन के दौरान भारत में प्रतिष्ठित सर पुरुषोत्तमदास ठाकुरदास स्मारक व्याख्यान माला में 'लेटिन अमरीका और एशिया में वृद्धि और स्थिरता' विषय पर दिया गया उनका व्याख्यान मेरी दृष्टि से इस विषय पर एक मार्गदर्शक (अग्रणी) व्याख्यान था।

मेक्सिको ने उस व्यापक आर्थिक और वित्तीय स्थिरता को सफलतापूर्वक प्राप्त कर लिया है जो त्वरित आर्थिक वृद्धि का पोषण करती है। मेक्सिको में लागू किये गये विशिष्ट सुधारों के दायरे ने, जिसमें कारोबारी परिवेश और कंपनी संचालन; मानवीय पूंजी का विकास; प्रोत्साहन आधारित सामाजिक सहायता कार्यक्रम; तथा स्वास्थ्य बीमा के लिए व्यापक पहुंच भी शामिल हैं, मेक्सिको की अर्थव्यवस्था में अंतर्राष्ट्रीय रुचि को आकृष्ट किया है। मौद्रिक नीति भी निम्न मुद्रास्फीति की व्यवस्था को प्राप्त करने और उसे बनाए रखने में समर्थ रही है; जो उभरती हुई अर्थव्यवस्थाओं में सामाजिक कल्याण के लिए अत्यधिक महत्वपूर्ण है। मेक्सिको अनेक विकासशील देशों के लिए विकास का एक आकर्षक मॉडल उपलब्ध कराता है। इन प्रभावपूर्ण परिणामों के लिए मेक्सिको में सार्वजनिक नीति के इस अग्रणी प्रकाश पुंज का मैं अभिनन्दन करता हूं।

* डा. या.वे.रेड्डी, गवर्नर, भारतीय रिज़र्व बैंक द्वारा 12 सितंबर 2007 को बैंक ऑफ मेक्सिको, मेक्सिको में दिया गया भाषण।

भारत : विकास और सुधार के अनुभव तथा संभावनाएं

या.वे.रेड्डी

I. भारत के विकास का अनुभव : सुधार-पूर्व अवधि

कुछ लोगों का विचार है कि मानवीय इतिहास की अधिकांश अवधि में भारत एक गरीब देश रहा है, हालांकि बीच-बीच में समृद्धि के स्थल तथा सम्पन्नता के क्षेत्र भी रहे हैं। तथापि, अन्य लोगों की दृष्टि में, विशेषकर वैश्विक पर्यटकों और उन लोगों की दृष्टि में, जिन्होंने भारत का अतिक्रमण किया, यह संकेत करता है कि भारत कम से कम 17 वीं शताब्दी तक एक समृद्ध देश था। ओइसीडी के एक प्रकाशन के अनुसार 17वीं शताब्दी में, मोटे तौर पर भारत का सकल देशी उत्पाद (जीडीपी) 90.8 बिलियन अमरीकी डालर का था, जो विश्व के जीडीपी का 24.4 प्रतिशत था (मेडिसन ऐंगुस, ''दि वर्ल्ड इकॉनामी : ए मिलेनियम पर्सपेक्टिवट'', ओईसीडी, 2001)। सितंबर 2004 में , मुंबई में प्रथम पी.आर.ब्रह्मानंद स्मारक व्याख्यान देते हुए लार्ड मेघनाथ देसाई ने यह उल्लेख किया था कि 19वीं शताब्दी के भारत की गाथा 'निराशा और हताशा' की नहीं थी। उन्होंने बताया कि 19वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में जिसके संबंध में सटीक आंकड़े उपलब्ध हैं, भारत एक खुली अर्थव्यवस्था था, जो निर्यातोन्मुखी वृद्धि का लाभ उठा रहा था, परंतु घरेलू प्रभारों को अदा करने के लिए निर्यात अधिशेष की निकासी होती थी। 1860 से 1900 तक की चालीस वर्षों की अवधि के दौरान प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि 0.5 से 1 प्रतिशत की थी। लार्ड देसाई के अनुसार, 20वीं शताब्दी के पहले पचास वर्ष भारतीय अर्थव्यवस्था के लिए 19वीं शताब्दी के अंतिम 40 वर्षों की तुलना में कम अनुकूल रहे। साथ ही, बीसवीं शताब्दी में 'भारत की राष्ट्रीय आय' नामक पुस्तक में प्रो. सिवासुब्रामनियन ने यह लिखा है कि 20वीं शताब्दी के पहले पांच दशकों (1900-01 से 1946-47) में 1947 में अपनी आजादी की प्राप्ति से पहले तक भारत की प्रति व्यक्ति जीडीपी अवरुद्ध (ठहरी हुई) थी, क्योंकि इस अवधि में जीडीपी में वृद्धि की प्रवृत्ति की दर 0.9 प्रतिशत थी और जनसंख्या की वृद्धि की दर 0.8 प्रतिशत। (सिवासुब्रामनियन, एस, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस 2000)।

20वीं शताब्दी के पहले पचास वर्षों की लगभग ठहरी हुई वृद्धि की तुलना में, जैसा कि सारणी 1 से देखा जा सकता है, 1950 से 1980 के दौरान औसतन वृद्धि दर 3.5 प्रतिशत के आसपास बैठती है, तुलनात्मक रूप से बेहतर थी, जबकि प्रति व्यक्ति वृद्धि दर ने उस लम्बी अवधि के दायरे को तोड़ा जो 1980 के आसपास तक औसतन 1.1 प्रतिशत की बनी रही थी। 1980 के बाद के दशक से औसत वृद्धि दर लगभग 6 प्रतिशत के आसपास रही, जबकि गत चार वर्षों में औसत वृद्धि दर 8.6 प्रतिशत की रही जो, भारी प्रतिमानी परिवर्तन हैं।

भारतीय अनुभव स्पष्ट रूप से यह सुझाता है कि मिश्रित अर्थव्यवस्था का मॉडल तथा 1950 के दशक से 1960 के दशक तक के दौरान प्रथम चरण में योजनाबद्ध विकास की रणनीति ने पिछले दशकों की तुलना में वृद्धि दर में नाटकीय रूप से सुधार दर्शाया है तथा अपरिहार्य बिल्डिंग ब्लाक (आधारभूत संरचना) उपलब्ध कराया है और देशी औद्योगिक आधार के लिए मजबूत नींव भी रखी, ऊर्जस्वित उद्यमी वर्ग, ज्ञानपूर्ण अर्थव्यवस्था, जिसमें ऊपर से नीचे तक सामाजिक और आर्थिक गतिमयता में उल्लेखनीय सुधार हुए। तथापि, योजनाबद्ध अवधि के प्रारंभिक दशकों के दौरान अपनायी गयी आयात प्रतिस्थापन की अंतर्मुखी रणनीति का परिणाम गिरती हुई उत्पादकता तथा उच्च लागत वाली अर्थव्यवस्था के रूप में हुआ। इसको महसूस करते हुए, और 1970 और 1980 के दशकों में तेल आघातों को ध्यान में रखते हुए 1980 के दशक के प्रारंभिक वर्षों में नीति में

सारणी 1 : भारत में वृद्धि और मुद्रास्फीति -ऐतिहासिक रिकार्ड

(प्रतिशत)

अवधि (औसत)	जीडीपी की वृद्धि दर	थोमूसू मुद्रास्फीति की दर
1	2	3
1951-52 से 1959-60	3.6	1.2
1960-61 से 1969-70	4.0	6.3
1970-71 से 1979-80	2.9	9.0
1980-81 से 1990-91	5.6	8.2
1991-92 (संकट वर्ष)	1.4	13.7
1992-93 से 1999-00	6.3	7.2
2000-01 से 2006-07	6.9	5.1

उल्लेखनीय परिवर्तन करने शुरू किये गये। इन नीतिगत उपायों ने भारत को 1980 के दशक में उच्चतर वृद्धि पथ पर ला दिया, परंतु अपने प्रयास में, कुछ व्यापक आर्थिक असंतुलन निर्मित कर दिये जो हमें 1991 में संकट की ओर ले गये जिसने अधिक व्यापक और सतत वहनीय सुधारों को जन्म दिया। 1991 से बनायी गयी नीतियों ने आर्थिक, राजनैतिक और सामाजिक क्षेत्रों में एक सुदृढ़ नींव के निर्माण के अवसर प्रदान किये जो योजनाबद्ध विकास के सुधार-पूर्व अवधि के दौरान रखी गयी।

II. विकास का अनुभव : सुधारोत्तर अवधि

सुधारों की शुरुआत

1980 के दशक में नीतिगत सुधारों ने उच्च वृद्धि के लिए प्रोत्साहन प्रदान किये और प्रतिस्पर्धात्मकता को बढ़ाया, परंतु वृद्धि की इस प्रकिया को जारी नहीं रखा जा सका। दमनकारी और कमजोर वित्तीय प्रणाली के अलावा यह प्रकिया गत दशक से उच्च राजकोषीय घाटे, उच्च स्तर के चालू खाता घाटे, तथा अल्पावधिक बाह्य ऋणों के बढ़ते हुए स्तरों के रूप में बढ़ते हुए व्यापक आर्थिक असंतुलनों के रूप में प्रकट हुई।1991 के संकट की शुरुआत का तात्कालिक कारण बाह्य घटनाओं का मेल भी था जिसने बाह्य क्षेत्र में चलनिधि की समस्याओं को जन्म दिया।

1991 के खाड़ी संकट ने बढ़ते तेल मूल्यों के कारण न केवल भारत के तेल आयातों को ही प्रभावित किया, बल्कि पश्चिम एशिया में निर्यात बाजार में भी कमी ला दी तथा आवक विप्रेषणों और पर्यटक आयों को भी हानि पहुंचायी। पूर्ववर्ती यूएसएसआर (सोवियत रूस) के विखंडन के साथ ही पूर्वी योरोप को निर्यातों में गिरावट ने इस संकट को और भी गहरा दिया। लगभग इसी समय, भारत की साख रेटिंग को घटा दिया गया जिसने इसके वाणिज्यिक उधार लेने तक पहुंच को सीमित कर दिया तथा सामान्य बैंकिंग सरणियों की ओर से विदेशों में स्थित भारतीय बैंकों को अल्पावधि ऋणों का नवीकरण करने के प्रति अनिच्छा पैदा हो गयी। अतः अपवादात्मक वित्तीय उपाय अपनाने अपरिहार्य हो गये तथा 1990-91 में भारत का समग्र घाटा आईएमएफ का सहारा लेकर तथा प्रारक्षित निधियों के आहरण इन दोनों ही स्रोतों पर समान रूप से निर्भर रहकर पूरा किया गया। 1990 के बाद के प्रारंभिक वर्षों में भुगतान संतुलन के संकट की गंभीरता का इसी से अनुमान लगाया जा सकता है कि भारत की विदेशी मुद्रा आस्तियों में तीव्रता से गिरावट आ गयी और वे अगस्त 1990 के 3.1 बिलियन अमरीकी डालर की तुलना में 12 जुलाई 1991 को घटकर मात्र 975 मिलियन अमरीकी डालर की रह गयीं।

अब मैं 1991 की अपनी घोर व्यथा भरे दिनों से अपेक्षाकृत सुविधापूर्ण 2007 तक की अपनी उत्तेजनापूर्ण यात्रा की गाथा का वर्णन करता हूं और भावी संभावनाओं और चुनौतियों का उल्लेख करते हुए उसे समाप्त करूंगा।

सुधार के उपाय

संकट के समय सावधानीपूर्वक यह निर्णय लिया गया कि हम अपने सभी ऋण देयताओं का आदर करेंगे और उनके लिए पुर्नसूचीकरण की मांग नहीं करेंगे और अनेक उपाय, जिनमें कुछ गैर-परम्परागत उपाय भी शामिल थे - जैसे अंतर्राष्ट्रीय सस्थाओं के साथ सोने को गिरवी रखना, इस संकट से निपटने के लिए उठाये गये । किये गये उपायों में अन्यों के साथ-साथ ये भी शामिल थे -गैर जरूरी आयातों को सीमित करना, तथा आइएमएफ तथा अन्य बहुराष्ट्रीय और द्विपक्षीय दानदाताओं से ऋण प्राप्त करना, व्यापार और निवेश के विस्तार के लिए अनुकूल वातावरण बनाने की दृष्टि से व्यापार, उद्योग, विदेशी निवेश, विनिमय दर, सार्वजनिक वित्त तथा वित्तीय क्षेत्रों तक व्याप्त व्यापक आर्थिक संरचनागत तथा स्थिरीकरण कार्यक्रम चलाये गये। यह मान लिया गया था कि व्यापार नीतियां, विनिमय दर नीतियां तथा औद्योगिक नीतियों को एक समन्वित नीतिगत ढांचे का एक भाग होना चाहिए, यदि हमारा उद्देश्य, सामान्यतया आर्थिक प्रणाली की और खासकर, विदेशी क्षेत्र की समग्र उत्पादकता, प्रतिस्पर्धात्मकता और दक्षता को बढ़ाना है।

आर्थिक सुधारों की विशेषताएं

1991 से भारत द्वारा शुरू की गयी आर्थिक सुधार की प्रक्रिया की कुछ महत्वपूर्ण विशेषताओं को गिनाना यहां रुचिकर होगा।

पहली, भारत में सुधारों के प्रति दृष्टिकोण ऐसा रहा है जिन्हें सावधानीपूर्वक तथा एक उचित क्रम देकर शुरू किया गया तथा ये उपाय सभी क्षेत्रों (अर्थात् मौद्रिक, राजकोषीय और बाह्य क्षेत्रों) तथा वित्तीय संस्थाओं और बाजारों का विकास करने में सहायक रहे। उद्देश्य यह रहा है कि यह प्रगति सभी क्षेत्रों में कुछ सामंजस्यता लिए हुए हो।

दूसरी, उदारीकरण की गति और उसका क्रम घरेलू गतिविधियों, विशेषकर, मौद्रिक और वित्तीय क्षेत्रों में होनेवाली गतिविधियों तथा विकसित होती हुई अंतर्राष्ट्रीय वित्तीय संरचना के अनुरूप हो। इन सुधारों पर व्यापक और गहन रूप से विचार किया गया तथा उनकी रूपरेखा अनिवार्यतः स्वदेशी रही।

तीसरी, सुधारों के प्रति दृष्टिकोण 'क्रमिक पर मजबूती के साथ' का रहा, न कि 'एक लम्बी छलांग' के रूप में। सुधारों को प्रायः एक प्रक्रिया के रूप में माना गया, किसी घटना के रूप में नहीं। इस दृष्टिकोण में, उदारीकरण की गति और क्रमबद्धता को इधर-उधर किया गया ताकि विश्वसनीय रूप से आगे बढ़ने में पर्याप्त सुभीता भी बनी रहे।

चौथी, इस सुधार की प्रक्रिया को आगे बढ़ाने के पीछे मुख्य बल व्यापक आर्थिक स्थिरता के साथ उच्चतर वृद्धि और दक्षता की तलाश रही है, साथ ही, ये सुधार इस अर्थ में समावेशनपरक हों कि सुधारों के लाभ प्रत्यक्षतः समाज के सभी वर्गों द्वारा उठाये जाएं। यह राष्ट्रीय और प्रादेशिक दोनों चुनावों में एक बहुत ही महत्वपूर्ण चुनावी मुद्दा बना।

III. चुनिंदा आर्थिक संकेतक

गत सात वर्षों के प्रमुख व्यापक आर्थिक संकेतक सारणी 2 में दिये गये हैं जो मोटे तौर पर प्रमात्रागत उपलब्धियों को सारांश में प्रस्तुत करते हैं।

सदेउ वृद्धि

2003-07 के दौरान गत चार वर्षों में भारतीय अर्थव्यवस्था एक उच्च वृद्धि के चरण में प्रवेश कर चुकी है, जिसमें सदेउ की वृद्धि दर औसतन 8.6 प्रतिशत वार्षिक की रही है। इस अवधि के दौरान वृद्धि की तेज गति के साथ-साथ कमी-बेशी में, विशेषकर, उद्योग और सेवा क्षेत्र में काफी सीमा तक संतुलन आया है। देशी उत्पाद की संरचना उल्लेखनीय रूप से सेवा क्षेत्रों की ओर बढ़ी है, जबकि उद्योग में भी वृद्धि तेज हो रही है। ऐसा लगता है कि भारतीय उद्योग ने हाल के वर्षों में पुनर्विन्यास और तकनीकी उन्नयन के माध्यम से वैश्विक प्रतिस्पर्धा का अच्छा जवाब दिया है। भारत की वृद्धि मुख्यतः घरेलू खपत से प्रेरित है, जिसने औसतन समग्र मांग का दो/तिहाई योगदान किया है।

बचत और निवेशगत शेष राशियां

भारतीय अर्थव्यवस्था में चल रहे संरचनागत रूपान्तरण की एक उल्लेखनीय विशेषता देशी बचत और निवेश की दरों में उल्लेखनीय वृद्धि की रही है। देशी निवेश दर 2000-01 के 24.3 प्रतिशत से बढ़कर 2005-06 में 33.8 प्रतिशत और देशी बचत दर 2000-01 के 23.7 प्रतिशत से बढ़कर 2005-06 में 32.4 प्रतिशत की हो गयी। परिवार क्षेत्र सकल घरेलू बचत में मुख्य योगदानकर्ता रहा और 2005-06 में इसकी बचत दर 22.3 प्रतिशत पर रखी गयी, जबकि लाभों में बढ़ोतरी के कारण निजी कंपनी क्षेत्र की बचत दर 2005-06 में बढ़कर 8.1 प्रतिशत की हो गयी। सार्वजनिक क्षेत्र जिसने सकारात्मक बचत दर्ज करना 2003-04 से शुरू किया था, 2000-01 के 1.7 प्रतिशत की ऋणात्मक बचत दर की तुलना में निरंतर राजकोषीय सुधार के कारण 2005-06 में 2.0 प्रतिशत की बचत दर दर्ज की। यह ध्यान में रखा जा सकता है कि 95 प्रतिशत से अधिक निवेश का वित्तपोषण घरेलू बचतों से किया गया। इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि भारतीय प्रति व्यक्ति आय तेजी से बढ़ रही है, तथा और अधिक

सारणी 2 : भारत : चुनिंदा आर्थिक संकेतक
(राजकोषीय वर्ष 1 अप्रैल से 31 मार्च तक है)

क्रम सं.	संकेतक	2000-01	2001-02	2002-03	2003-04	2004-05	2005-06	2006-07
	संपदा क्षेत्र							
1	सकल देशी उत्पाद (सदेउ) सांकेतिक अमरीकी डालर बिलियन*	460	478	508	602	696	806	911
2	सदेउ, वास्तविक प्रतिशत परिवर्तन	4.4	5.8	3.8	8.5	7.5	9.0	9.4
3	प्रति व्यक्ति आय, अमरीकी डालर #	455	461	473	543	618	712	797
4	औद्योगिक सदेउ वास्तविक प्रतिशत परिवर्तन	6.4	2.7	7.1	7.4	9.8	9.6	10.9
5	सेवा सदेउ वास्तविक प्रतिशत परिवर्तन	5.7	7.2	7.4	8.5	9.6	9.8	11.0
6	बचत दर सदेउ के प्रतिशत के रूप में	23.7	23.5	26.4	29.7	31.1	32.4	–
7	निवेश दर सदेउ के प्रतिशत के रूप में	24.3	22.9	25.2	28	31.5	33.8	–
	मुद्रा, मूल्य, ऋण							
8	व्यापक मुद्रा (एम3), मार्चांत, वर्ष दर वर्ष प्रतिशत परिवर्तन	16.8	14.1	12.7	16.7	12.1	17.0	21.3
9	व्यापक मुद्रा (एम3), मार्चांत, सदेउ के प्रति प्रतिशत	62.5	65.7	69.9	72.5	72.0	76.5	80.2
10	थोक मूल्य सूचकांक, मार्चांत, वर्ष दर वर्ष प्रतिशत परिवर्तन	4.9	1.6	6.5	4.6	5.1	4.1	5.9
11	सीपीआई, औद्योगिक कामगार, मार्चांत, वर्ष दर वर्ष प्रतिशत परिवर्तन	2.5	5.2	4.1	3.5	4.2	4.9	6.7
12	बैंक ऋण, मार्चांत, सदेउ के प्रतिशत के रूप में	32.3	33.3	36.6	36.7	40.9	47.5	51.5
13	खाद्येतर ऋण, मार्चांत, वर्ष दर वर्ष प्रतिशत परिवर्तन	14.9	13.6	18.6	18.4	27.5	31.8	28.4
	राजकोषीय क्षेत्र							
14	केंद्र का सकल राजकोषीय घाटा, सदेउ के प्रतिशत के रूप में	5.7	6.2	5.9	4.5	4.0	4.1	3.5
15	संयुक्त सकल राजकोषीय घाटा, केंद्र और राज्य सदेउ के प्रतिशत के रूप में	9.5	9.9	9.6	8.5	7.5	6.7	6.4
16	सदेउ के प्रति संयुक्त ऋण, प्रतिशत	70.8	76.4	81.0	81.6	82.5	80.5	77.0
	बाह्य क्षेत्र							
17	वस्तुओं का निर्यात, भुगतान संतुलन, अमरीकी डालर बिलियन में	45.5	44.7	53.8	66.3	85.2	105.2	127.1
18	वस्तुओं का आयात भुगतान संतुलन, अमरीकी डालर बिलियन में	57.9	56.3	64.5	80.0	118.9	157	192
19	चालू खाता शेष (+ अधिशेष / - घाटा), अमरीकी डालर बिलियन में	-2.7	3.4	6.3	14.1	-2.5	-9.2	-9.6
20	चालू खाता शेष (+ अधिशेष/-घाटा), सदेउ के प्रतिशत के रूप में	-0.6	0.7	1.2	2.3	-0.4	-1.1	-1.1
21	निवल पूंजी आगम, अमरीकी डालर बिलियन में	8.8	8.6	10.8	16.7	28.0	23.4	44.9
22	विदेशी प्रत्यक्ष निवेश, आगम, अमरीकी डालर बिलियन में	4.0	6.1	5.1	4.3	6.0	7.7	19.5
23	विदेशी प्रत्यक्ष निवेश, बहिर्गम, अमरीकी डालर बिलियन में	0.8	1.4	1.8	1.9	2.3	2.9	11.0
24	निवल संविभागीय आगम, अमरीकी डालर बिलियन में	2.6	2.0	0.9	11.4	9.3	12.5	7.1
25	अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा भंडार, मार्चांत, अमरीकी डालर बिलियन में	42.3	54.1	76.1	113.0	141.5	151.6	199.2
26	ऋण के प्रति मुद्रा भंडार प्रतिशत	41.7	54.7	72.5	101.1	114.9	119.9	128.5
27	मुद्रा भंडार की आयात सुरक्षा, माहों की संख्या	8.9	11.7	14.2	16.9	14.3	11.6	12.4
28	खुलापन, वस्तुओं और सेवाओं का व्यापार सदेउ के प्रतिशत के रूप में	29.2	27.6	30.7	31.5	39.5	44.8	49.2
29	कुल बाह्य ऋण, सदेउ के प्रतिशत के रूप में	22.4	21.1	20.4	17.8	17.3	15.8	16.4
30	विनिमय दर, रुपया प्रति डालर, वित्तीय वर्ष का औसत	45.7	47.7	48.4	46.0	44.9	44.3	45.3
31	वास्तविक प्रभावी विनिमय दर, प्रतिशत परिवर्तन	5.3	-0.1	-4.9	1.5	2.6	5.4	-1.7
	वित्तीय क्षेत्र							
32	बैंकिंग क्षेत्र की आस्तियां, सदेउ के प्रतिशत के रूप में	67.1	73.3	75.3	77.6	82.8	86.9	–
33	जोखिम भारित आस्तियों के प्रति पूंजी (सीआरएआर), प्रतिशत	11.4	12.0	12.7	12.9	12.8	12.3	–
34	सकल गैर निष्पादक आस्तियां, कुल अग्रिमों के प्रति प्रतिशत	11.4	10.4	8.8	7.2	5.2	3.3	–
35	बाजार पूंजीकरण, सदेउ के प्रतिशत के रूप में	27.2	26.8	23.3	43.4	54.3	84.7	85.9

– : उपलब्ध नहीं

* : वित्त वर्ष के दौरान औसत विनिमय दर द्वारा चालू बाजार मूल्यों पर सदेउ का विभाजित करके गणना की गयी।

: प्रति व्यक्ति आय वार्षिक आधार पर है जिसे वर्ल्ड बैंक इकॉनामिक आउटलुक डेटाबेस से लिया गया है।

स्रोत : वर्ल्ड इकॉनामिक आउटलुक, आइएमएफ, ग्लोबल फाइनेंसियल स्टेबिलिटी रिपोर्ट्स आइएमएफ, वर्ल्ड डेवलपमेंट इंडिकेटर्स, वर्ल्ड बैंक।

वित्तीय समावेशन को प्राप्त करने के लिए वित्तीय गहनता लाने की दिशा में नीतिगत प्रयास चालू हैं, भारत में बचत दर मध्यम से लेकर दीर्घावधि में और भी बढ़ सकती है। बचत दरों का स्तर इतना होना चाहिए कि वह विदेशी बचतों पर निर्भर रहे बिना अर्थव्यवस्था की निवेशगत आवश्यकताओं का घरेलू रूप से वित्तपोषण कर सके।

उत्पादकता और दक्षता

अर्थव्यवस्था में निवेश की गति में तेजी के अनुरूप पूंजी के उपयोग में दक्षता तथा उत्पादकता में वृद्धि के साक्ष्य देखे गये। भारत से संबंधित हाल के कुछ अध्ययनों ने यह संकेत किया है कि हाल के वर्षों में कुल उपादान उत्पादकता (टीएफपी) वृद्धि में तेजी आयी है। उदाहरण के लिए रॉडिक्स तथा सुब्रामनियन ने 2004 के एक आइएमएफ वर्किंग पेपर में यह संकेत किया है कि भारत ने थोड़े से सुधारों की तुलना में उत्पादकता वृद्धि की भारी मात्रा प्राप्त की है, और भी हाल के एक अन्य लेख में बेरी बॉसवर्थ, सुसान कोलिन्स तथा अरविन्द विरमानी (2007) ने इस प्रवृत्ति की पुष्टि की है। उन्होंने पाया है कि 1960-80 के दौरान प्रति कर्मचारी उत्पादन केवल 1.3 प्रतिशत की दर से बढ़ा, जबकि सदेउ की दर 3.4 प्रतिशत जितनी निम्न थी। उनकी गणना के अनुसार टीएफपी वृद्धि मुश्किल से शून्य से मात्र कुछ ऊपर थी; जो यह संकेत करती है कि उत्पादन में अधिकांशतः वृद्धि पूर्णतः निविष्टियों में वृद्धि के कारण थी। इसके विपरीत, प्रति कर्मचारी उत्पादन में वृद्धि दर 1980-2004 के दौरान लगभग तीन गुनी बढ़कर 3.8 प्रतिशत की हो गयी, जबकि टीएफपी दस गुनी बढ़कर 2 प्रतिशत की हो गयी। श्रमिक उत्पादकता में वृद्धि में तेजी आने का साक्ष्य अन्य अध्ययनों में भी उपलब्ध है (इकॉनामिक इंटेलिजेंस यूनिट, 2007)। टाटा सर्विसेज द्वारा किये गये एक अध्ययन (2003) के अनुरूप, अखिल भारतीय विनिर्माण क्षेत्र के लिए श्रमिक उत्पादकता (प्रति श्रमिक उत्पादन) सुधार-पूर्व अवधि की तुलना में सुधारोत्तर अवधि में काफी बढ़ा है।

गरीबी और रोजगार

1990 के दशक के प्रारंभिक वर्षों से सतत आर्थिक वृद्धि गरीबी में कमी से भी जुड़ी रही है। एक समान अनुस्मरण अवधि आधारित खपत संवितरण के अनुसार गरीबी की रेखा से नीचे रह रही जनता का अनुपात 1993-94 के 36 प्रतिशत से गिरकर 2004-05 में 27.8 प्रतिशत रह गया। इस बात के भी साक्ष्य है कि रोजगार वृद्धि में भी तेजी आयी है जो 1993-94 से 1999-2000 की अवधि के बीच 1.57 प्रतिशत वार्षिक से बढ़कर 1999-2000 से 2004-05 तक की अवधि के दौरान 2.48 प्रतिशत वार्षिक की हो गयी। कुछ रिपोर्टों तथा अन्य जीवन साहित्य के साक्ष्य के अनुरूप सदेउ की वृद्धि दर में आयी इस तेजी के लाभ केवल बड़े शहरों तक ही सीमित नहीं रहे हैं, बल्कि अन्य शहरी और अर्ध शहरी क्षेत्र भी इससे लाभान्वित हुए हैं। अल्प रोजगार में कुछ कमी आयी है, इसके प्रमाण हैं, तथा अनौपचारिक क्षेत्र में प्रच्छनन बेरोजगारी भी घटी है।

मुद्रा, मूल्य और ऋण

हाल के वर्षों में सदेउ में उच्च वृद्धि के साथ-साथ मुद्रास्फीति में भी कुछ कमी आयी है, जो 2003-07 के दौरान औसतन 4.9 प्रतिशत पर रही। ऐतिहासिक दृष्टि से भारत ने बहुत उच्च मुद्रास्फीति नहीं देखी है। थोक मूल्य सूचकांक की दृष्टि से शीर्ष मुद्रास्फीति की दर 1980-81 से 1990-91 तक की अवधि के 8.2 प्रतिशत से गिरकर संकट के बाद की अवधि के दौरान अर्थात् 1992-93 से 2006-07 तक 6.2 प्रतिशत पर आ गयी और हाल की अवधि में इसमें और भी तेजी से कमी आयी।

2006-07 के दौरान मुद्रा आपूर्ति ($एम_3$) में वर्ष दर वर्ष के आधार पर 21.3 प्रतिशत की वृद्धि हुई और यह वर्ष के लिए संकेतात्मक पूर्वानुमानों से काफी ऊपर थीं। यह मुख्यतः देश में पूंजी प्रवाहों में आयी भारी तेजी से झलकती है। अनुसूचित वाणिज्यिक बैंकों द्वारा दिये गये गैर-खाद्य ऋण पिछले वर्ष की 31.8 प्रतिशत की सर्वोच्च

वृद्धि के और ऊपर 2006-07 के दौरान 28.4 प्रतिशत बढ़े। बैंक ऋण में वृद्धि का रुख खुदरा रूप से उधार देने की और विशेषकर, आवास, वास्तविक सम्पदा, व्यापार, परिवहन और व्यावसायिक सेवाओं तथा गैर-बैंकिंग वित्तीय कंपनी क्षेत्र को ऋण देने को प्राथमिकता दी गयी जो अब तक ऋण बाजार में महत्वपूर्ण नहीं थे। इन गतिविधियों ने अर्थव्यवस्था में अत्यधिक तेजी आने के मुद्दे पर वादविवाद का रूप धारण कर लिया, परंतु मुद्रास्फीति में बाद में आयी गिरावट ने इस ओर ध्यान आकृष्ट नहीं किया।

IV. मौद्रिक नीति तथा विनियामक ढांचा

जहां तक मौद्रिक नीति के ढांचे का प्रश्न है, मौद्रिक नीति के बुनियादी उद्देश्य अर्थात् मूल्य स्थिरता तथा वृद्धि को समर्थन देने के लिए ऋण प्रवाह को सुनिश्चित करना भारत में अपरिवर्तित बने रहे। पिछले कुछ वर्षों में भारतीय अर्थव्यवस्था के बढ़ते हुए खुलेपन को देखते हुए व्यापक आर्थिक और वित्तीय स्थिरता संबंधी मुद्दों में अतिरिक्त महत्ता प्राप्त कर ली है।

भारत में व्यापक मुद्रा ($एम_3$) 1980 के दशक के मध्य से एक मध्यस्थ लक्ष्य के रूप में उभरी हैं जो इस विचार पर आधारित है कि मुद्रा, उत्पाद और मूल्यों में परस्पर स्थिर संबंध हैं। बढ़ते हुए वित्तीय खुलेपन, प्रमात्रागत परिवर्तियों की तुलना में ब्याज दरों और विनिमय दरों के साथ-साथ वर्तमान संप्रेषण प्रक्रिया-तंत्र में बदलावों के बढ़ते हुए प्रमाणों को देखते हुए, रिज़र्व बैंक ने अप्रैल 1988 में बहुल संकेतक दृष्टिकोण को अपनाया, जिसके द्वारा ब्याज दरें या विभिन्न वित्तीय बाजारों में प्रतिलाभ की दरें तथा साथ ही करेंसी, ऋण, व्यापार, पूंजी प्रवाहों, राजकोषीय स्थिति, मुद्रास्फीति, विनिमय दर आदि के संबंध में भी ऐसे ही आंकड़े और साथ ही नीति संबंधी संभावनाओं का पता लगाने के लिए उत्पादन के आंकड़ों के साथ-साथ दिये जाते हैं। प्रणाली में चलनिधि प्रबंधन सरकारी प्रतिभूतियों की सीधी खरीद/बिक्री के रूप में खुले बाजार के परिचालनों के माध्यम से, तथा चलनिधि समायोजन सुविधा के अंतर्गत दैनिक रिवर्स रिपो और रिपो परिचालनों के माध्यम से किया जाता है और यह भारतीय अर्थव्यवस्था में ब्याज दर का संकेत देने के लिए मुख्य लिखत के रूप में उभरी है। भारी पूंजी आगमों और निष्प्रभावीकरण के संदर्भ में चलनिधि का प्रबंधन करने के लिए नीतिगत लिखतों की उपलब्धता को और भी सशक्त बनाया गया है जिसके लिए बाजार स्थिरीकरण योजना के अंतर्गत भी खुले बाजार के परिचालन किये जाते हैं।

जहां अप्रत्यक्ष तथा विभिन्न प्रकार के लिखतों को वरीयता दी गयी है, वहीं यदि परिस्थितियों की मांग होगी तो प्रत्यक्ष लिखतों का भी सहारा लेने में कोई संकोच नहीं है। वास्तव में, जटिल स्थितियां प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष लिखतों के विविध रूपों में गतिशीलता के साथ अलग-अलग मेल की अपेक्षा करती है जो स्थितियों, और विशेषकर, संप्रेषणगत प्रक्रिया-तंत्र के अनुकूल हो।

इसी प्रकार, जहां केंद्रीय बैंक की मौद्रिक और विवेक-सम्मत नीतियों के बीच विभेद बनाये रखने के अनेक लाभ हैं, वहीं रिज़र्व बैंक ने प्रावधानीकरण संबंधी अपेक्षाओं को तथा बैंकिंग आस्तियों की चुनिंदा श्रेणियों जैसे-वास्तविक भू-संपदा, आवासन, उपभोक्ता वित्त तथा पूंजी बाजार में एक्सपोजरों (निवेशों) के लिए जोखिम भारांकों को बढ़ाने में कोई संकोच नहीं किया। बैंकों के तुलनपत्र से इतर निवेशों की भी गहन निगरानी की जा रही है। ऋण व्युत्पन्नियों (डेरिवेटिवज) के उत्पाद, लेखांकन तथा विवेक-सम्मत पहलुओं पर सलाह लेने के लिए विस्तृत मार्गदर्शी दिशानिदेश जारी किये गये हैं। प्रणालीगत रूप से महत्वपूर्ण जमा स्वीकार करने वाली और जमा स्वीकार न करने वाली गैर-बैंकिंग वित्तीय कंपनियों के साथ बैंकों के संबंधों को संचालित करने के लिए एक ढांचा स्थापित किया गया है।

प्रायः आम तौर पर रिज़र्व बैंक का दृष्टिकोण उन सकारात्मक योगदानों को मान्यता देने का रहा है जो वित्तीय

नवोन्मेष वित्तीय मध्यस्थन की दक्षता को बढ़ाने के लिए करते हैं। साथ ही, रिज़र्व बैंक वर्तमान संचालन के मानदंडों, जोखिम प्रबंध प्रणालियों तथा विदेशी, सार्वजनिक, निजी तथा सहकारी बैंकों तथा उनसे संबद्ध गैर-बैंकों में प्रोत्साहन संबंधी ढांचे को ध्यान में रखते हुए, स्थिरता को सुनिश्चित करने के लिए उपयुक्त सुरक्षोपायों को स्थापित करने पर भी विचार करता है। समग्रतः इन प्रगामी, परंतु चौकस नीतियों ने वित्तीय प्रणाली की दक्षता और स्थिरता दोनों में योगदान किया है तथा व्यापक स्थिरता के परिवेश में वर्तमान वृद्धि की गति को बनाये रखने में समर्थ बनाया।

कुछ ऐसे महत्वपूर्ण कारक, जिन्होंने 1990 के दशक के दौरान मौद्रिक नीति संबंधी ढांचे तथा भारत में विद्यमान परिचालन प्रक्रियाओं में परिवर्तनों को रूपाकार प्रदान किया, वे थे - बजट घाटे को रिज़र्व बैंक द्वारा इसके स्वतः मौद्रीकरण को अलग करना, ब्याज दरों का अविनियमन, बेहतर सम्पर्कों (संबंधों) के माध्यम से घटकीकरण को कम करके वित्तीय बाजारों का विकास तथा प्रौद्योगिकीकृत बुनियादी संरचना के साथ भुगतान और निपटान प्रणालियों का विकास। राजकोषीय उत्तरदायित्व तथा बजट प्रबंध अधिनियम, 2003 के पारित हो जाने के बाद रिज़र्व बैंक ने अप्रैल 2006 से सरकारी प्रतिभूतियों के प्राथमिक निर्गमों में भाग लेना बंद कर दिया। हाल ही के वैधानिक संशोधनों ने बैंकों के लिए नकदी प्रारक्षित और सांवधिक चलनिधि अनुपात संबंधी अपेक्षाओं को इस प्रकार के स्तरों पर, रिज़र्व बैंक द्वारा ऐसे निर्धारणों के न्यूनतन या अधिकतम सांविधिक सीमा से प्रतिबंधित हुए बिना, नमनीय रूप से उपयोग करने में समर्थ बनाया।

V. राजकोषीय नीति संबंधी सुधार तथा लोक ऋण प्रबंधन : केंद्र और राज्य

1990 के दशक के प्रारंभिक वर्षों में प्रचलित राजकोषीय प्रणाली की विशेषताएं थीं - लगातार बने रहे उच्च राजकोषीय घाटे और बढ़ते हुए ऋण समुच्चय से मुद्रास्फीति में बढ़ोतरी होना, वित्तीय मंदी तथा अर्थव्यवस्था के व्यापक आर्थिक बुनियादी तत्वों में समग्र गिरावट आना। सदेउ के प्रतिशत के रूप में केंद्र सरकार का औसत सकल राजकोषीय घाटा 1970 के दशक के 3.8 प्रतिशत की तुलना में 1980 के दशक में 6.8 प्रतिशत था। केंद्र सरकार द्वारा राजकोषीय उत्तरदायित्व तथा बजट प्रबंध (एफआरबीएम) अधिनियम, 2003 को तथा अनेक राज्य सरकारों द्वारा राजकोषीय उत्तरदायित्व विधान (एफआरएल) को अपनाये जाने के बाद से हाल के वर्षों में सरकारी वित्त के स्वास्थ्य में जो उल्लेखनीय सुधार देखा गया है, वह उसका सकारात्मक परिणाम है।

भारतीय रिज़र्व बैंक तथा राज्य

भारत की संघीय प्रणाली की सरकार के अंतर्गत, संविधान केंद्र और राज्य सरकारों के बीच राजस्व उगाही की शक्तियों और व्यय के कार्यों का आबंटन करता है। आम तौर पर, व्यापक आर्थिक स्थिरता और अंतर्राष्ट्रीय संबंधों को बनाये रखने के लिए अपेक्षित कार्य केंद्र को सौंपे गए और सार्वजनिक सेवाओं जैसे कानून और व्यवस्था, आंतरिक सुरक्षा, सार्वजनिक स्वास्थ्य, साफ-सफाई, जल-आपूर्ति और कृषि-संबंधी प्रावधान मोटे तौर पर राज्यों को सौंपे गये। दोनों स्तर की सरकारें शिक्षा, स्वास्थ्य और बुनियादी संरचना के लिए उत्तरदायित्व को बांटती हैं, हालांकि इनमें राज्यों की भूमिका महत्वपूर्ण है।

भारत में, राज्य सरकारों द्वारा उधार लेने के लिए उन्हें केंद्र सरकार की पूर्व अनुमति लेनी होती है। यह भारत के संविधान की धारा 293 में निहित है, जिसके अंतर्गत कोई भी राज्य सरकार, जो केंद्र सरकार के प्रति ऋणी है, उसे उधार लेने के लिए पूर्व अनुमति अपेक्षित है। केंद्रीय अनुमोदन राज्य सरकार की प्रतिभूतियों को बेचने की प्रक्रिया में निहित है और इसलिए इसका उल्लंघन नहीं किया जा सकता। इसके अलावा, राज्य सरकारों को केंद्र की भांति विदेशों से उधार लेने की अनुमति नहीं है।

भारतीय राजकोषीय प्रणाली के संबंध में रिज़र्व बैंक दो महत्वपूर्ण भूमिकाएं अदा करता है । वे हैं- केंद्र और राज्य सरकारों के बैंकर तथा ऋण प्रबंधक की। भारतीय रिज़र्व बैंक अधिनियम राज्य सरकारों के साथ करार करके रिज़र्व बैंक को इसके बैंकिंग परिचालन और इनके लोक ऋण का प्रबंध करने की अनुमति देता है। जहां केंद्र और राज्य सरकारों दोनों के लिए बैंकर की भूमिका अदा करते हुए रिज़र्व बैंक उनकी प्राप्तियों और भुगतानों में आने वाली विसंगतियों से निपटने के लिए अर्थोपाय अग्रिमों के रूप में अस्थायी समर्थन भी प्रदान करता है।

रिज़र्व बैंक नवम्बर 1997 से राज्य वित्त सचिवों का एक छमाही सम्मेलन भी आयोजित करता रहा है। अपने प्रारंभ से ही इस सम्मेलन ने सभी पणधारकों (राज्य सरकारों, केंद्र सरकार तथा रिज़र्व बैंक) के बीच राज्य सरकारों के वित्त से संबंधित विषयों पर परस्पर चर्चा, विचारों को आदान-प्रदान करने के लिए तथा नीति तथा परिचालन से संबंधित महत्वपूर्ण मुद्दों पर सहमतिपूर्ण समाधान पर पहुंचने के लिए एक बहुत ही उपयोगी मंच प्रदान किया है। जिन क्षेत्रों पर चर्चा की गयी, उनमें अधिक महत्वपूर्ण विषय राज्य स्तरों पर राजकोषीय उत्तरदायित्व संबंधी विधान, बजटीय, लेखांकन और पारदर्शी संव्यवहारों का मानकीकरण, नकदी प्रबंधन, समेकित शोधन निधि तथा प्राकृतिक आपदा निधि का प्रबंधन, राजकोषीय गारंटी का मूल्यांकन आदि से संबंधित थे। रिज़र्व बैंक सक्रिय है और समय-समय पर राज्यों की आवश्यकताओं के प्रति सजग रहता है -जैसा कि हाल की दो गतिविधियों से प्रमाणित है।

भारी अधिशेष शेषराशियों के संचयन तथा ऐसी शेष राशियों के निवेश पर अर्जित ऋणात्मक अंतर के चलते कुछ राज्य सरकारों ने रिज़र्व बैंक से आग्रह किया है कि वह उनके बकाया राज्य विकास ऋणों (एसडीएल) की वापस खरीद की व्यवस्था करे। तदनुसार, रिज़र्व बैंक ने भारत सरकार की सहमति से एसडीएल की वापस खरीद के लिए एक सामान्य योजना बनायी। बारहवें वित्त आयोग की सिफारिशों का अनुसरण करते हुए बाह्य ऋणों को (रुपए में) ऋण प्रति ऋण आधार पर राज्यों को दे दिया जायेगा। इसके फलस्वरूप, अब राज्य सरकारों को ऐसे ऋणों के संबंध में विदेशी मुद्रा विनिमय जोखिम को वहन करना होगा। पुनः राज्य सरकारों के कहने पर हाल ही में, रिज़र्व बैंक ने राज्य सरकारों के अधिकारियों के लाभार्थ विदेशी मुद्रा जोखिम के प्रबंध पर एक कार्यशाला का आयोजन किया था।

रिज़र्व बैंक राज्यों के साथ अन्य कई विषयों पर, विशेषकर, कृषि, छोटे उद्योगों, कमजोर तबकों को उधार देने, जमाकर्ताओं के संरक्षण, वित्तीय समावेशन, वित्तीय साक्षरता, प्राकृतिक आपदाओं से निपटने आदि के संबंध में मुख्यतः अपने क्षेत्रीय कार्यालयों के माध्यम से, परस्पर विचारों का आदान-प्रदान करता है।

लोक ऋण का प्रबंधन

केंद्र और राज्य सरकारों का सकल लोक ऋण सदेउ के प्रतिशत के रूप में उच्च है, वर्तमान में यह 75 प्रतिशत है। तथापि भारत में लोक ऋण प्रबंधन की अनेक खास विशेषताएं हैं जो उल्लेखनीय हैं। पहली, राज्यों को विदेशों से सीधे उधार लेने के अवसर उपलब्ध नहीं हैं। दूसरी, लगभग सारा ही लोक ऋण स्थानीय मुद्रा में मूल्यवर्गित है और लगभग सारा ही ऋण निवासियों का है। तीसरी, केंद्र और राज्यों दोनों के लोक ऋण सक्रिय रूप से और विवेक-सम्मत रूप से रिज़र्व बैंक द्वारा प्रबंधित हैं जो बिना किसी उतार-चढ़ाव के वित्तीय बाजारों की सुभीता को सुनिश्चित करता है। चौथी, सरकारी प्रतिभूति बाजार, कुल कारोबार, गहनता और सहभागियों की दृष्टि से हाल के वर्षों में उल्लेखनीय रूप से विकसित हो चुका है और उसके और भी महत्वपूर्ण रूप से विकास किया जा रहा है।

पांचवें, घाटों के वित्तपोषण में संविदागत बचतें विपणनयोग्य ऋणों की अनुपूर्ति करती हैं। अंतिम, ऋण

के प्राथमिक निर्गमों के प्रत्यक्ष मौद्रिक वित्तीयन को अप्रैल 2006 से बंद कर दिया गया है। अतः सदेउ की तुलना में लोक ऋण का यह भारी भंडार जहां तक स्थिरता का प्रश्न है, अभी तक चिंताजनक नहीं बना है। वहीं यह भी स्वीकार किया गया है कि दीर्घावधि निर्वहनीयता के लिए इसे विवेक-सम्मत स्तर तक क्रमिक रूप से कम करने की जरूरत है।

VI. बाह्य क्षेत्र के सुधार

उदारीकरण की सोची-समझी और क्रमबद्ध रूप में अपनायी गयी रणनीति से लाभान्वित होकर भारत का बाह्य क्षेत्र अधिक ऊर्जस्वित हो गया है। निर्यात गत तीन वर्षों में औसतन लगभग 25 प्रतिशत की दर से बढ़ रहे हैं, जबकि इसी अवधि में आयात लगभग 35 प्रतिशत की गति से बढ़े हैं। चालू खाता 2001-02 से 2003-04 की अवधि के दौरान अधिशेष में रहा, परंतु इसके बाद से यह मामूली से घाटे में चल रहा है। पूंजी खाते में उल्लेखनीय शक्ति आयी जिसके परिणामस्वरूप विदेशी मुद्रा भंडार में निरंतर वृद्धि होती रही जो 31 अगस्त 2007 को लगभग 228.8 बिलियन अमरीकी डालर के आसपास था। जैसा कि सारणी 2 से देखा जा सकता है, बाह्य क्षेत्र के चलनिधि और संवहनीयता के संकेतकों में उल्लेखनीय सुधार हुआ है।

रुपये की विनिमय दर 1 मार्च 1993 से बाजार द्वारा निर्धारित हो गयी और अगस्त 1994 तक आइएमएफ करार के अनुच्छेद VIII को स्वीकार करने के कारण भारत में चालू खाते में तर्कसम्मत बनाने के क्रमिक रूप से प्रयास किये गये जिसने घरेलू उद्योग को वैश्विक प्रतिस्पर्धा का सामना करने के लिए अपने आपको तैयार करने का अवसर प्रदान किया। उदाहरण के लिए कृषि से इतर उत्पाद पर सीमा-शुल्क 1991-92 के 150 प्रतिशत से घटकर 2007-08 में केवल 10.0 प्रतिशत रह गया है। जून 2000 में विदेशी मुद्रा प्रबंध अधिनियम (फेमा) के अधिनियम के रूप में पारित हो जाने के पश्चात् उदारीकरण के लिए विधायी ढांचे में गुणात्मक परिवर्तन लागू किये गये। इसके साथ ही, विनियमन के उद्देश्यों को पुनः इस प्रकार पारिभाषित किया गया कि इसका उद्देश्य भारत में व्यापार और भुगतानों को सुविधाजनक बनाना तथा विदेशी मुद्रा बाजार के विकास और उसकी कार्य प्रणाली को व्यवस्थित बनाना रहा है।

पूंजी खाते के उदारीकरण की मात्रा तथा समय में अन्य समसामयिक गतिविधियों के साथ-साथ, जैसे बैंकिंग क्षेत्र को सुदृढ़ करना, राजकोषीय समेकन, बाजार का विकास तथा समेकन, व्यापार का उदारीकरण तथा बदलते देशी और बाह्य आर्थिक परिवेश के साथ उचित क्रमबद्धता बनाये रखी गयी। यह भी स्वीकार कर लिया गया है कि चालू और पूंजी खातों के बीच संबंध हो सकते हैं, अतः चालू खाते के लेनदेनों के रूप में पूंजी प्रवाहों को बचाने के लिए प्रक्रियाएं स्थापित की गयी हैं। इसके अलावा, पूंजी प्रवाहों के स्रोतों और प्रकारों में एक पदक्रम स्थापित किया गया है। इनमें प्राथमिकता बाह्य निर्गमों की तुलना में आवकों को उदार बनाने को दी गयी है; परंतु आवकों से जुड़े सभी बहिर्गमों को पूर्णतः मुक्त कर दिया गया है। आवकों के प्रकारों में, विदेशी प्रत्यक्ष निवेश को स्थिरता की दृष्टि से वरीयता दी गयी है, जबकि अत्यधिक अल्पावधिक बाह्य ऋण को सीमित किया गया है। कंपनियों, व्यक्तियों, बैंकों के बीच विभेद किया गया है। परिचालन की दृष्टि से पूंजी खाते के प्रबंधन की प्रक्रिया में दो रूटों (मार्गों) का परिचालन शामिल है - अर्थात् स्वचालित और गैर-स्वचालित। अपेक्षित दिशा में निरंतर संतुलन बनाये रखने का कार्य स्वचालित मार्ग का विस्तार करते हुए तथा अधिकांश प्रतिबंधित लेनदेनों को गैर-स्वचालित, परंतु अनुमोदित मार्ग से और बाद में एक स्वचालित या विनियमित व्यवस्था के अंतर्गत किया जाता है।

गत कुछ वर्षों से पूंजी के बहिर्गम के संबंध में नीतिगत ढांचे में उल्लेखनीय उदारीकरण लाया गया है। प्रत्येक देश को देश विशेष के संदर्भ को, विशेषकर, वास्तविक क्षेत्र की विशेषताओं को, न कि केवल पूंजी के आवकों के

संदर्भगत स्तर को, तथा अर्थव्यवस्था की खपाने की क्षमता को ध्यान में रखते हुए पूंजी के बर्हिगमों के लिए अपनी नीति संबंधी व्यवस्था को बनाना होगा। पहली, भारत में पूंजी के बर्हिगमों की वर्तमान व्यवस्था को उदार माना जाता है, परंतु उसमें भारत से बाहर वास्तविक अर्थव्यवस्था में, अधिग्रहण मार्ग से निवेश सहित निवेश करने के लिए कंपनियों के लिए प्रोत्साहनपरक ढांचे नहीं हैं। इस व्यवस्था ने देश की भलीभांति सेवा की है, क्योंकि भारतीय कंपनियां उत्तरोत्तर रूप से विदेशी इकाइयों के साथ सहक्रियाएं स्थापित करने में समर्थ रही हैं ताकि वे प्रचुरताजन्य मात्रा की कमी, जोकि भारत में पारंपरिक समस्या रही है, की पूर्ति करने के लिए तथा अभिग्रहणों के माध्यम से प्रभाव क्षेत्र की जानकारी त्वरित रूप से प्राप्त करने में समर्थ हो सकें। दूसरी, और अधिक पूर्ण पूंजी खाते की परिवर्तनीयता संबंधी समिति (अध्यक्ष : श्री एस.एस.तारापोर, 2006) द्वारा की गयी सिफारिशों के अनुसरण में व्यक्तिगत परिवारों द्वारा बहिर्निगमों के उल्लेखनीय उदारीकरण को लागू किया गया है। इसमें और आगे के उदारीकरण को कुछ अंतर्राष्ट्रीय अनुभवों के संदर्भ में लागू किया जायेगा, जो यह दर्शाते हैं कि निवासी व्यक्ति अकसर अंतर्राष्ट्रीय निवेशकों की तुलना में उस समय बर्हिवाह की पहल करते हुए आगे निकल जाते हैं, जबकि घरेलू अर्थव्यवस्था के कार्य-निष्पादन या स्थिरता के संबंध में विपरीत होती प्रतीत होती है। तीसरी, जहां तक वित्तीय मध्यस्थकों के जरिये बर्हिवाह के लिए व्यवस्था का प्रश्न है, तो इसके दृष्टिकोण की विशेषता हैं - सतर्कता तथा प्रमात्रागत शर्तें, जहां विवेक-सम्मत विचार तथा पूंजी खाते के प्रबंधन की मजबूरियां दोनों प्रासंगिक हो जाती हैं।

VII. वित्तीय क्षेत्र के सुधार

वित्तीय क्षेत्र के सुधारों में प्रमुख नीतिगत उपाय सांविधिक चलनिधि अनुपातों जैसे नकदी प्रारक्षित अनुपात और सांविधिक चलनिधि अपेक्षाओं में चरणबद्ध रूप में कटौतियों तथा चुनिंदा घटकों को छोड़कर जमाराशियों और उधार पर ब्याज दरों के अविनियमन से संबंधित हैं। बैंकों के स्वामित्व का विशाखीकरण एक दूसरी विशेषता है जिसने सरकारी स्वामित्व में कमी लाये जाने के कारण उत्पन्न हुई सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों में निजी शेयर धारिता को स्टॉक एक्सचेंजों में सूचीबद्धीकरण के माध्यम से बनाने में समर्थ बनाया।

बैंकिंग क्षेत्र के सुधारों में प्रतिस्पर्धा, विनियमन और स्वामित्व में व्यापक रूप से लाया गया यह सुधार एक अव्यवधानकारी और लागत में मितव्ययितापूर्वक किया गया। वस्तुतः हमारे बैंकिंग क्षेत्र के सुधार आसन्न समस्याओं के प्रबंधन में हमारे सार्वजनिक क्षेत्र की गत्यात्मकता तथा घरेलू और विदेशी निजी क्षेत्रों से प्रतिस्पर्धा करते हुए बढ़ने की सार्वजनिक नीति की व्यवहारिकता के अच्छे उदाहरण हैं। विवेक-सम्मत मार्गदर्शी दिशानिर्देशों के निर्धारण तथा बाजार के अनुशासन को प्रोत्साहित करने के अलावा, भारत में विनियामक ढांचा उत्तरोत्तर रूप में बैंकों के मालिकों और निदेशकों के 'सही और उपयुक्त' के माध्यम से बेहतर संचालन को सुनिश्चित करने पर अपना ध्यान केंद्रित करता रहा है। रिज़र्व बैंक ने विशाखीकृत स्वामित्व पर बल देते हुए निजी क्षेत्र के बैंकों में स्वामित्व और बेहतर संचालन पर विस्तृत मार्गदर्शी दिशानिदेश जारी किये हैं। रिज़र्व बैंक ने बैंकिंग क्षेत्र में सूचना प्रौद्योगिकी को लागू करने पर भी पर्याप्त जोर दिया है।

अब निजी क्षेत्र के बैंकों में, निर्धारित मार्गदर्शी दिशानिदेशों के अधीन 74 प्रतिशत के विदेशी प्रत्यक्ष निवेश की अनुमति दी गयी है। पुनः गैर-बैंकिंग वित्तीय कंपनियों (एनबीएफसी) में स्वचालित मार्ग के अंतर्गत 19 गतिविधियों में 100 प्रतिशत प्रत्यक्ष विदेशी निवेश की अनुमति है। ऐसे निवेशों के लिए न्यूनतम पूंजीकरण के मानदंड हैं। इसके अलावा, 100 प्रतिशत एनबीएफसी सहायक संस्था भी स्थापित की जा सकती है, बशर्ते उसे विदेशी निवेश संवर्धन बोर्ड, भारत सरकार (एफआइपीबी)

से अनुमति प्राप्त हो। एनबीएफसी में पणधारिता प्राप्त करने के लिए विदेशी संस्थाओं की रुचि में उल्लेखनीय वृद्धि देखी गयी है। हाल ही में, यह सुनिश्चित करने के लिए कि ऐसी एनबीएफसी कंपनियां जो उनके लिए बनाये गये विनियामक निर्धारणों का पूर्णतः पालन करती हैं, नीतिगत पहलें की गयी हैं।

सहकारी घटक में, शहरी सहकारी बैंक (यूसीबी) विविध पर्यवेक्षी और विनियामक प्राधिकारियों की समस्या से जूझ रहे हैं। साथ ही वे वित्तीय अनुशासन के साथ-साथ घरेलू चरित्र की विशेषता को बनाये रखने की चुनौती भी झेल रहे हैं। अतः शहरी सहकारी बैंकों की पुनर्बहाली और स्वस्थ वृद्धि की दिशा में नीतिगत ढांचे का विकास करने की दृष्टि से शहरी सहकारी बैंकों के लिए हाल के वर्षों में अनेक संरचनागत, वैधानिक और विनियामक उपाय किये गये हैं। उनके स्वस्थ विकास के लिए एक विज़न दस्तावेज भी बनाया गया है। कमजोर बड़े बैंकों की पुनर्संरचना शुरू हो चुकी है और वह भलीभांति जारी है। इसी प्रकार, ग्रामीण सहकारी बैंकिंग संरचना तथा क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों से संबंधित मुद्दों पर सक्रियतापूर्वक विचार किया गया है तथा व्यापक उपायों की योजना बनायी गयी है। उनमें से कुछ पर कार्यान्वयन हो रहा है।

वित्तीय बाजारों के सुधार

1990 के दशक के प्रारम्भिक वर्षों में भारत में वित्तीय बाजारों की विशेषताएं थीं - नियंत्रित ब्याज दरें, मात्रात्मक सीमाएं, सांविधिक पूर्व-क्रय, सरकारी प्रतिभूतियों के लिए गिरफ्त बाजार, राजकोषीय घाटे के लिए केंद्रीय बैंक के वित्तपोषण पर अत्यधिक निर्भरता, निर्धारित विदेशी मुद्रा विनिमय दर तथा चालू और पूंजी खातों पर प्रतिबंध। वित्तीय बाजारों की दक्षता में सुधार लाने के लिए व्यापक रूप में विनियामक और संस्थागत सुधार क्रमिक रूप से चरणबद्ध रूप में समय के साथ-साथ शुरू किये गये। इनमें शामिल हैं - बाजार की व्यष्टि संरचना का विकास, संरचना अवरोधों को हटाना, नये खिलाड़ियों/लिखतों की शुरुआत/विशाखीकरण, वित्तीय आस्तियों का मुक्त रूप से मूल्य निर्धारण, प्रमात्रागत प्रतिबंधों को शिथिल करना, बेहतर विनियामक प्रणालियां, नयी प्रौद्योगिकी की शुरुआत, ट्रेडिंग की बुनियादी संरचना, समाशोधन और निपटान परम्पराओं (संव्यवहारों) में सुधार तथा बेहतर पारदर्शिता।

वित्तीय बाजारों में सुधारों को यह सुनिश्चित करते हुए कि वे वास्तविक क्षेत्र के अनुरूप हैं सावधानीपूर्वक क्रमबद्ध किया गया। प्रभावी मौद्रिक नीति के निर्माण तथा मौद्रिक संप्रेषण प्रणाली-तंत्र के लिए परिवेश का विकास करने हेतु भी ये सुधार महत्वपूर्ण थे। इसमें उल्लेखनीय विशेषता यह है कि सरकारी प्रतिभूति तथा कंपनी ऋण बाजार अनिवार्यतः घरेलू मांग से प्रेरित हैं, क्योंकि इन बाजारों में विदेशी संस्थागत निवेशकों और अनिवासियों की सहभागिता सीमित है और उस पर उच्चतम सीमाएं लागू हैं।

मुद्रा, सरकारी प्रतिभूतियां तथा विदेशी मुद्रा बाजारों के बीच सम्पर्क स्थापित कर दिया गया है और वह बढ़ रहा है। प्राथमिक बाजार में मूल्य की खोज पहले की अपेक्षा कहीं अधिक विश्वसनीय है तथा द्वितीयक बाजार ने महत्तर गहनता और तरलता प्राप्त कर ली है। रिज़र्व बैंक ने संस्थागत, प्रक्रियागत तथा परिचालनगत अनेक उपाय किये हैं ताकि भुगतान प्रणालियां, सुरक्षित तथा दक्ष बनायी जा सकें। दक्षता में वृद्धि करने तथा जोखिम को कम करने के लिए तत्काल सकल निपटान प्रणाली (आरटीजीएस) तथा अन्य इलैक्ट्रानिक भुगतान प्रक्रिया-तंत्र को बड़े स्तर पर प्रोत्साहित किया गया है।

VIII. वित्तीय समावेशन तथा ग्राहक सेवाएं

रिज़र्व बैंक ने वित्तीय समावेशन में शामिल न किये गये जनसंख्या के घटक को संरचनागत वित्तीय प्रणाली की ओर आकर्षित करने के उद्देश्य से अनेक उपाय किये हैं। रिज़र्व बैंक के व्यापक दृष्टिकोण का उद्देश्य है ''लोगों

को बैंकिंग प्रणाली से जोड़ना''। वित्तीय समावेशन से संबंधित उपाय संक्षेप में नीचे दिये गये हैं -

पहला, बैंकों को यह सूचित किया गया कि वे शून्य या न्यूनतम शेषराशियों तथा अन्य प्रभारों के साथ नो फ्रिल्स के बुनियादी बैंकिंग खाते उपलब्ध करायें ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि ऐसे खाते जनसंख्या के व्यापक तबके तक पहुंच सकें। चूंकि भारत में अनेक क्षेत्रीय भाषाएं हैं, अतः बैंकों से यह अपेक्षित है कि वे सारी मुद्रित सामग्री को संबंधित क्षेत्रीय भाषा में खुदरा ग्राहकों को उपलब्ध करायें।

दूसरा, बैंकों को यह अनुमति भी दी गयी है कि वे गैर-सरकारी संगठनों/ स्वयं सहायता समूहों (एनजीओ/ एसएचजी), व्यष्टि वित्त संस्थाओं तथा अन्य सिविल सोसाइटी संगठनों की सेवाओं का उपयोग कारोबारी सुविधा प्रदाताओं तथा कारोबारी प्रतिनिधि (बीसी) मॉडलों के उपयोग के माध्यम से वित्तीय और बैंकिंग सेवाएं प्रदान करने में मध्यस्थों के रूप में ले सकते हैं।

तीसरा, बैंक डाकघरों के बड़े और व्यापक पैमाने पर फैले नेटवर्क का उपयोग अपने कारोबारी प्रतिनिधियों के रूप में करने के लिए और इस प्रकार बैंक, डाकिये की स्थानीय जनसंख्या की सहज जानकारी तथा उसपर निहित विश्वास का लाभ लेने और इस प्रकार अपनी पहुंच को बढ़ाने के लिए भारतीय डाक प्राधिकारियों के साथ करार कर रहे हैं। इसी प्रकार बीमा कंपनियों के साथ मिलकर बैंक कम लागत पर नवोन्मेषी बीमा पालिसी उपलब्ध करा रहे हैं, जिनमें उनकी जीवन की विकलांगता तथा स्वास्थ्य को सुरक्षा कवर प्रदान किया जाता है।

चौथा, अपने कारोबारी प्रतिनिधियों (बीसी) की सहायता से अपनी पहुंच को बढ़ाने के लिए रिज़र्व बैंक बैंकों को आईसीटी समाधानों का प्रयोग करने के लिए प्रेरित करता रहा है। 18 जून, 2007 को रिज़र्व बैंक ने बैंकिंग और आम व्यक्ति से संबंधित सभी विषयों पर 13 भारतीय भाषाओं में बहुभाषी वेबसाइट शुरू की है।

बैंकों द्वारा प्रदान की जाने वाली ग्राहक सेवा में सुधार लाने के लिए भी रिज़र्व बैंक ने अनेक पहलें की है।

पहली, खाताधारक के रूप में बैंक के साथ मुख्य संबंध के अलावा, पेंशन सहित, विदेशी मुद्रा विनिमय, करेंसी तथा सरकारी लेनदेन के क्षेत्रों में बैंक के साथ ग्राहकों के लेनदेनों के संबंध में नवम्बर 2003 में स्थापित सार्वजनिक सेवाओं की प्रक्रियाओं और कार्य-निष्पादन की लेखा परीक्षा संबंधी स्थायी समिति की सिफारिशें लागू की जा रही हैं।

दूसरी, बैंकों और रिज़र्व बैंक में ग्राहक सेवा से संबंधित सभी गतिविधियों को एक ही विभाग के अंतर्गत लाने की दृष्टि से, रिज़र्व बैंक ने 1 जुलाई 2006 को 'ग्राहक सेवा विभाग' नाम से एक नया विभाग गठित किया। इस नये विभाग के गठन से ग्राहक सेवा के मुद्दों पर विशेष ध्यान केंद्रित करने को सुविधा हुई है।

तीसरी, बैंकिंग लोकपाल योजना को 1995 में बैंकिंग सेवाओं में कमी से जुड़ी ग्राहकों की शिकायतों के समाधान के लिए एक त्वरित और कम खर्चीला मंच बैंक ग्राहकों को प्रदान करने के लिए शुरू किया गया था। 2006 में इसकी पुनः समीक्षा की गयी । अब इस योजना की व्याप्ति बढ़ा दी गयी है और यह सभी वाणिज्यिक बैंकों, क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों और अनुसूचित प्राथमिक सहकारी बैंकों पर लागू है। शिकायतकर्ता अपनी शिकायतें आनलाइन सहित किसी भी रूप में दर्ज करा सकते हैं।

चौथी, स्थापित सर्वोत्तम संव्यवहारों पर आधारित संहिताओं और मानकों के आधार पर बैंकों के कार्य-निष्पादन को मापने वाली संस्था की कमी स्वीकार करते हुए रिजर्व बैंक ने 2006 में भारतीय बैंकिंग संहिता तथा मानक बोर्ड का गठन किया। यह एक स्वायत्त तथा स्वतंत्र निकाय है जो स्व-नियामक संगठन है। बैंक अपने आपको सदस्य के रूप में बोर्ड के पास दर्ज कराते हैं तथा सहमत मानकों और संहिताओं के अनुरूप सेवाएं प्रदान करते हैं। इसके बदले में बोर्ड उन संहिताओं और मानकों के अनुपालन के

संबंध में, जिनके लिए बैंक सहमत हुए हैं, निगरानी और आकलन करता है। बैंकों की ग्राहकों के प्रति वचनबद्धता की संहिता 1 जुलाई 2006 को जारी की गयी थी। इस संहिता में व्यक्तियों द्वारा किये जानेवाले लेनदेनों के विभिन्न पहलू जैसे जमा खाते, ब्याज दरें, फीस और प्रभारों, विप्रेषणों, मृतक खाता धारकों के संबंध में दावों का निपटान, ऋण उत्पाद, सेफ्टी लॉकर, क्रेडिट कार्ड, गारंटियां, देयताओं की उगाही तथा शिकायतों का समाधान शामिल है। रिज़र्व बैंक ने बैंकों के लिए यह आवश्यक बना दिया है कि वे अपने कार्यालयों और शाखाओं में तथा अपनी वेबसाइट पर निर्धारित फार्मेट में विभिन्न सेवा प्रभारों के ब्यौरे प्रदर्शित करें।

पांचवीं, चूंकि बैंक के ग्राहकों में वित्तीय शिक्षा की कमी, शिकायतों की संख्या बढ़ने में, विशेषकर, क्रेडिट कार्ड के परिचालनों के संबंध में, मुख्य योगदान करती है, अतः रिज़र्व बैंक वित्तीय शिक्षा के लिए सर्वोच्च प्राथमिकता दे रहा है, जो यह सुनिश्चित करेगी कि बैंकों के ग्राहक सूचना/जानकारी पर आधारित निर्णय लें। अलग-अलग बैंकों ने भी इस संबंध में विभिन्न कदम उठाने शुरू कर दिये हैं जैसे वित्तीय शिक्षा संबंधी पोस्टर लगाना, छोटी-छोटी फिल्में तथा वेबसाइट आदि।

IX. संभावनाएं, चुनौतियां तथा शक्तियां

अल्पावधिक संभावनाएं

मौद्रिक नीति के प्रयोजनों के लिए रिज़र्व बैंक ने अपने वार्षिक नीति संबंधी वक्तव्य में वर्ष 2007-08 के लिए वास्तविक सकल देशी उत्पाद की वृद्धि को 8.5 प्रतिशत पर बने रहने का आकलन किया है जिसमें यह कल्पना की गयी है कि अंतर्राष्ट्रीय कच्चे तेल के मूल्यों में और वृद्धि नहीं होगी, तथा कोई घरेलू या बाहरी आघात भी नहीं आयेगा। आगे के समय के लिए नीति संबंधी वरीयता, मूल्य स्थिरता तथा भलीभांति टिकी मुद्रास्फीतिगत प्रत्याशाओं के पक्ष में है, जिसमें प्रयास यह रहेगा कि मुद्रास्फीति को 2007-08 में 5.0 प्रतिशत तक और मध्यावधि में 4.0 - 4.5 प्रतिशत के दायरे में रोके रखा जाये। मौद्रिक नीति के निर्माण के प्रयोजन के लिए 2007-08 के लिए रिज़र्व बैंक ने मुद्रा आपूर्ति ($एम_3$) की वृद्धि दर को 17.0 - 17.5 प्रतिशत के दायरे में रहने और खाद्येतर ऋण को 24-25 प्रतिशत के दायरे में रहने का पूर्वानुमान लगाया है जो वृद्धि और मुद्रास्फीति की वृद्धि संबंधी दृष्टिकोण के अनुरूप हैं। मौद्रिक नीतिगत जोर को बनाये रखते हुए रिज़र्व बैंक ने 31 जुलाई 2007 को जारी वार्षिक नीति संबंधी वक्तव्य की प्रथम तिमाही समीक्षा में वित्तीय स्थिरता की महत्ता को रेखांकित किया था।

हाल की गतिविधियों पर आंकड़े मोटे तौर पर 2007-08 के लिए प्रत्याशाओं के अनुरूप हैं। केंद्रीय सांख्यिकी संगठन के अनुसार वर्ष 2007-08 की पहली तिमाही (अप्रैल-जून 2007) के दौरान वास्तविक सदेउ में 2006-07 की अंतिम तिमाही (जनवरी -मार्च 2007) के दौरान 9.1 प्रतिशत की वृद्धि और पिछले साल की पहली तिमाही (अप्रैल-जून 2006) के दौरान 9.6 प्रतिशत की वृद्धि की तुलना में 9.3 प्रतिशत की दर से वृद्धि हुई। थोक मूल्य सूचकांक वर्ष-दर-वर्ष के आधार पर एक वर्ष पहले के 5.12 प्रतिशत की तुलना में, 25 अगस्त 2007 को समाप्त सप्ताह के दौरान गिरकर 3.79 प्रतिशत रह गया। 17 अगस्त 2007 को व्यापक मुद्रा ($एम_3$) की आपूर्ति में पिछले वर्ष के बराबर वर्ष-दर-वर्ष के आधार पर 20.0 प्रतिशत की दर से वृध्दि हुई। हालांकि गैर-खाद्येतर ऋण की वृद्धि उछाल भरी और व्यापक आधार वाली रही, फिर भी यह एक वर्ष पहले के 32.8 प्रतिशत से गिरकर 17 अगस्त 2007 को 23.6 प्रतिशत की रह गयी। निर्यातों ने अपनी गति को बनाये रखा, तथापि, आयात तेजी से बढ़े, जिनके कारण 2007-08 के पहले चार महीनों (अप्रैल से जुलाई) के दौरान पिछले वर्ष की इसी अवधि में 15.8 बिलियन अमरीकी डालर की तुलना में व्यापार घाटा बढ़कर 25.7 बिलियन अमरीकी डॉलर का हो गया।

उपलब्ध सूचना 2007-08 के दौरान अभी तक दृढ़ गति से वृद्धि की गति को बनाये रखने का संकेत करती है जिसमें वृद्धि की धड़कनें ज्यादा व्यापक आधार वाली हो गयीं। सकल घरेलू बचत और निवेश की दर में उपभोक्ता मांग में वृद्धि तथा नयी क्षमता को बढ़ाने तथा विद्यमान क्षमता को अधिक गहन तथा दक्षता पूर्व रूप से उपयोग करने / उसका पूंजीकरण करने से ऐसी आशा है कि वह 2007-08 के दौरान वृद्धि को समर्थन देगी। मुद्रास्फीति को कम करने में तथा मुद्रास्फीतिगत प्रत्याशाओं को स्थिर करने में मिली हाल की सफलता को चाहिए कि वह वृद्धि चक्र के वर्तमान विस्तारकारी चरण को समर्थन देगी। तथापि यह आवश्यक है, कि अंतराष्ट्रीय कच्चे तेल के उच्च और उद्वेगशील मूल्यों से उभरनेवाला मुद्रास्फीतिगत दृष्टिकोण, मुख्य खाद्य मूल्यों में निरन्तर जारी मजबूती तथा विश्वभर में मांग-आपूर्ति के बढ़ते हुए अंतरालों के कारण घिर रही अनिश्चितताओं के कारण भारत में भी उभरते हुए जोखिमों का निरंतर आकलन करना जरूरी है।

वैश्विक गतिविधियों से उभरने वाले जोखिम, विशेषकर, मुद्रास्फीतिगत दबावों, वित्तीय बाजारों द्वारा जोखिमों का पुनर्मूल्य निर्धारण, तथा कुछ आस्ति वर्गों में मंदी के खतरों के रूप में निरंतर बने हुए हैं। अत्यधिक लीवरेजिंग ने वैश्विक वित्तीय प्रणाली की संवेदनशीलता को बढ़ा दिया है। चलनिधि की दशाओं में भारी परिवर्तन और साथ ही उनसे जुड़ी अनिश्चितताएं जोखिमों के आकलन में बाधा खड़ी कर रहे हैं। विश्व भर में वित्तीय बाजारों और मौद्रिक नीति के ढांचों इन दोनों से जुड़े परिवर्तन के चलते, भारत इन गतिविधियों से अछूता नहीं रह सकता। रिज़र्व बैंक के लिए अब नीतिगत चुनौती मुद्रास्फीतिगत दबावों को सीमित रखते हुए तथा वित्तीय स्थिरता पर ध्यान केंद्रित करते हुए वर्तमान संक्रमण को उच्चतर वृद्धि के पथ पर ले जाने को प्रबंधित करना है। अतः प्रसंगवश रिज़र्व बैंक में हम वैश्विक वित्तीय तथा मौद्रिक परिस्थितियों में विद्यमान उच्चस्तर की अनिश्चितताओं के प्रति उपयुक्त रूप से प्रतिक्रिया करने में समर्थ बनने के लिए बढ़ी हुई चौकसी बनाये हुए हैं।

मध्यावधिक चुनौतियां

एक बड़ी और विशाखीकृत अर्थव्यवस्था के लिए जिसमें प्रतिव्यक्ति आय निम्न है, परंतु जो वैश्विक परिवेश के एक अत्यधिक अनिश्चितता के माहौल में संरचनागत संक्रमण से गुजर रही हो, सार्वजनिक नीति के लिए कई गुनी चुनौतियां हैं। मैं उनमें से कुछ पर अपना ध्यान केंद्रित करता हूँ जिन्हें रिज़र्व बैंक में हम न्याय-संगत वृद्धि के लिए मध्यावधिक सम्भावनाओं को बढ़ाने में महत्वपूर्ण मानते हैं।

पहली, जहाँ 60 प्रतिशत से ज्यादा कामगार कृषि पर निर्भर हैं, वहीं यह क्षेत्र सदेउ में 20 प्रतिशत का योगदान करता है। इसके अलावा, कृषि से उत्पन्न की गयी सदेउ की वृद्धि जनसंख्या में वृद्धि की दर से मामूली-सी ही अधिक है जो गरीबी में तेजी से कमी लाना सुनिश्चित करने के लिए पर्याप्त नहीं है। कृषि उत्पादन में उतार-चढ़ाव का न केवल समग्र वृद्धि पर, वरन् जैसा कि 2006-07 के अनुभव ने पर्याप्त रूप से दर्शा दिया है, निम्न और स्थिर मुद्रास्फीति बनाए रखने में भी इसके निहितार्थ है। कृषि क्षेत्र में बढ़ी हुई वृद्धि, खाद्य सुरक्षा, गरीबी उन्मूलन, मूल्य स्थिरता, समग्र समावेशन परक वृद्धि तथा समग्र अर्थव्यवस्था की वृद्धि की निर्वहनीयता को बनाये रखने के लिए कृषि क्षेत्र की बढ़ी हुई वृद्धि महत्वपूर्ण है। हाल ही में हमारे माननीय प्रधान मंत्री ने ग्यारहवीं पचंवर्षीय योजना के दौरान कृषि की वृद्धि दर को दुगुना करके 4.0 प्रतिशत तक ले आने के लिए एक प्रमुख योजना की घोषणा की। खाद्य उत्पादों की बढ़ती हुई कीमतों से निपटने तथा अगले तीन वर्षों में उनकी उपलब्धता में दर्शनीय परिवर्तन सुनिश्चित करने के लिए एक समय-बद्ध खाद्य सुरक्षा मिशन की भी घोषणा की गयी।

दूसरी, विनिर्माण क्षेत्र ने भारी वृद्धि दर्ज की है, बावजूद अनेक बुनियादी संरचना संबंधी खामियों के। आधुनिक

बुनियादी संरचना की अपर्याप्त उपलब्धता तथा दक्ष मानव बल की कमी, विनिर्माण क्षेत्र की वृद्धि में सर्वाधिक महत्वपूर्ण अवरोधक हैं। यह आवश्यक है कि विद्यमान बुनियादी संरचना संबंधी सुविधाओं, विशेषकर, सड़कों, बंदरगाहों और पावर को बढ़ाया जाए ताकि उद्योग को बढ़ने के लिए अनुकूल परिवेश उपलब्ध कराया जा सके। यहाँ सबसे महत्वपूर्ण मुद्दे हैं - विनियामक ढांचे तथा समग्र निवेशगत परिवेश, जिनसे सरकार निपट रही है। एक अन्य चिंता रही है - लागत की वसूली, जो सरकारी-निजी सहभागिता (साझेदारी) के साथ सुधरने की आशा है।

तीसरी, हाल के वर्षों में, चक्रीय तत्वों को हिसाब में लेने के पश्चात भी राजकोषीय समेकन की प्रक्रिया की मुख्य विशेषता, मुख्य घाटा संकेतकों में भारी कमी की रही है। रिज़र्व बैंक में हमारी, राज्य सरकारों को वित्तपोषण पर किये गये अध्ययन उनके राजकोषीय स्वास्थ्य के संबंध में आशावाद के लिए आधार प्रदान करते हैं। हमने दो महत्वपूर्ण क्षेत्रों की पहचान की हैं, यदि उनसे निपट लिया गया तो, उसका परिणाम राजकोषीय शक्ति सम्पन्नता का होगा। एक है आर्थिक सहायता (सब्सीडि) की समाप्ति, जो अनुपयुक्त हैं और सीधे-सीधे गरीबों तक नहीं पहुंचती है तथा अधिकांश कर-छूटों की समाप्ति जो कि निश्चित रूप से विकृतिकारी हैं। इसके अलावा, अत्यावश्यक सार्वजनिक सेवाओं की सुपुर्दगी, जैसे हमारी जनसंख्या के बहुत बड़े भाग के लिए शिक्षा और स्वास्थ्य एक प्रमुख चुनौती है।

चौथी, भारत में इस बात की मान्यता बढ़ती जा रही है कि सरकार की क्षमता को सुदृढ़ करने के लिए तथा इसे बुनियादी कार्य करने देने में समर्थ बनाने के लिए संचालन सम्बंधी सुधार महत्वपूर्ण हैं। आर्थिक संचालन की संस्थाओं को सुधारने के कार्य में अन्यों के अलावा शामिल हैं - अनेक संगठन और कार्य जो बाजारों की अच्छी कार्य-प्रणाली के लिए अनिवार्य हैं।यह माना जाना चाहिए कि बेहतर संचालन का सह-अस्तित्व तभी रह सकता है जब सार्वजनिक क्षेत्र भली-भांति और दक्षता पूर्वक कार्य करते हों, जो उनको सुधारने से ही प्राप्त किया जा सकता है, उन्हें कम महत्वपूर्ण समझ कर उपेक्षित करने से नहीं। अतः व्यावसायिक समुदाय का सार्वजनिक संस्थाओं को सुधारने और उन्हें सशक्त बनाने में महत्वपूर्ण योगदान है। मैं, प्रोफेसर अविनाश के. दीक्षित-अमरीकन आर्थिक संघ के चुने गये अध्यक्ष, ने जून 2007 को मुम्बई में दिये अपने द्वितीय बी.आर.ब्रह्मानन्द स्मारक व्याख्यान में जो कहा था, उसकी पुष्टि करता हूं :-

''अन्त में, मैं समझता हूँ कि संस्थागत सुधारों को बनाने की प्रक्रिया शिक्षाविद अर्थशास्त्रियों और कारोबारी लोगों के बीच लाभप्रद सहयोग का एक सुअवसर प्रदान करती है। अनेक शिक्षाविद अर्थशास्त्री अक्सर कारोबारी/व्यावसायियों को पसंद नहीं करते तथा समस्याओं का एक आंकड़ागत समाधान देने को वरीयता देते हैं। इन दिनों पश्चिमी देशों में यह कम सत्य है, परंतु यह प्रवृत्ति भारत में अधिक विद्यमान लगती है। मैं आशा करता हूँ कि वे भी मानेंगे कि आर्थिक गवर्नेंस के संस्थानों को अनुकूल रूप में सुधारने का कार्य महत्वपूर्ण है। वे इसे एक व्यावसायिक लोगों के अवसरवादी व्यवहार को रोकने का एक तरीका मानते हैं। उनमें से अनेक ऊपर से आने वाले विचारों की तुलना में नीचे से उभरने वाले विचार से आकर्षित भी हो सकते हैं। अनेक शैक्षिक अध्ययनों, सैद्धांतिक और अनुभव-जन्य अध्ययनों, विकास के निष्पादन के अलावा ऐसी संस्थाओं की सीमाओं के संबंध में भी अनेक अध्ययन हुए हैं। कारोबारी लोगों को अपने उद्योगों में विशिष्ट गवर्नेंस की आवश्यकता की स्पष्ट अवधारणा है। ये दोनों अपनी-अपनी सोच और सहक्रियाओं के सहयोग से इन अध्ययनों की सीख को अपनाकर उसे भारतीय परिस्थितियों के अनुकूल रूप में अपना सकते हैं और देश की तीव्र आर्थिक प्रगति को जारी रखने के लिए बेहतर परिवेश के निर्माण में योगदान कर सकते हैं''। (दीक्षित, अविनाश के., दूसरा पी.आर.ब्रह्मानन्द स्मारक व्याख्यान, जून 2007, मुम्बई पृ.17-18)।

शक्तियां

भारतीय अर्थव्यवस्था में कुछ अन्तर्निहित शक्तियां हैं - परिमाणनीय तथा गैर-परिमाणनीय, जो भावी चुनौतियों से निपटने को सुविधाजनक बनायेंगी। मैं परिमाणनीय शक्तियों के बारे में विस्तार से उल्लेख कर चुका हूँ। इन परिमाणनीय शक्तियों के अलावा, कुछ ऐसी गैर-परिमाणनीय शक्तियां भी हैं जो हमारी अर्थव्यवस्था में हैं और मैं उनमें से कुछ का उल्लेख करना चाहूंगा। पहली, विज्ञान और प्रौद्योगिकी के स्नातकों का भारी समूह तथा लाखों करोड़ों लोग जो अंग्रेजी भाषा से परिचित हैं, इसकी शक्ति के स्रोत हैं। भारत में बहु-भाषाओं से परिचित होने से यह लोगों को बहु-सांस्कृतिक-स्थितियों को बेहतर रूप से अपनाने के लिए तैयार करती है और उनके लिए इसे आसान बना देती है कि वे अन्तर्राष्ट्रीय प्रणाली में आसानी से समायोजित (फिट) हो जाते हैं। दूसरी, भारत विश्व में दूसरा सबसे बड़ा लोक-तंत्र है। यहाँ मुक्त प्रेस का आस्तित्व ज्यादतियों के विरूद्ध कुछ सुरक्षा उपलब्ध कराती है, और सरकारों को सभी स्तरों पर अधिक जबाबदेह बनाती है, जो अन्यथा नहीं होती। तीसरी, अनेक राज्यों द्वारा महिला सशक्तीकरण के लिए की गयी पहलें प्रभावपूर्ण हैं, जो उनके अधिकारों की रक्षा करती हैं, तथा उन्हें अपने आत्मसम्मान को प्राप्त करने तथा अपने व्यक्तिगत जीवन पर और सामाजिक संबंधों पर नियंत्रण प्राप्त करने में सहायता करती हैं। चौथी, केन्द्र तथा कई राज्यों दोनों में, मिले-जुले मंत्रिमंडल तथा समय-समय पर होने वाले चुनावों के बावजूद, हमारी राजनैतिक परिवेश को राजनैतिक प्रणाली की स्थिरता का नाम दिया जा सकता है। पांचवीं, भारत अगले कुछ दशकों में विश्व में युवातम देशों में से एक होगा। यह ''जनसंख्यागत लाभांश'' को अनिवार्य लाभ के रूप में देखा जा सकता है जिन्हें दक्षता के उन्नयन तथा सुदृढ़ गवर्नेंस की प्राप्ति के लिए स्थापित पूर्व-अपेक्षाओं के रूप में देखा जा सकता है। छठे, कारोबारी परिवेश की दृष्टि से, अर्थव्यवस्था के बाजारोन्मुखीकरण के साथ प्रभावकारी वृद्धि ऊपर बढ़ने के अभ्यास के रूप में रही है जिसमें काफी व्यापक आधार वाली बढ़ती हुई उद्यमियों की जमात है। ये प्रवृत्तियां सम्भवतः भारत में पहले से ही बड़े और वृद्धिशील उद्यमियों के वर्ग को, जो व्यावसायिकता से ओत-प्रोत है और वैश्विक रूप से प्रतिस्पर्धी बनने के प्रयास कर रहा है, नवोन्मेष करने के लिए झुकाव को दर्शा रही हैं।